प्रबोधचन्द्रोदय

डा० धनञ्जय वासुदेव द्विवेदी,
सहायक प्रोफेसर, संस्कृत विभाग,
डा० श्यामा प्रसाद मुखर्जी विश्वविद्यालय, राँची

महाकवि श्रीकृष्ण मिश्रकृत प्रबोधचन्द्रोदय छह अङ्कों का शान्तरस-प्रधान दार्शनिक नाटक है। इसका विषय अद्वैत वेदान्त के अनुसार यह प्रतिपादन करना है कि पुरुष मति, विवेक, श्रद्धा, उपनिषद् आदि के सहयोग से अविद्या आदि एवं नास्तिकों के द्वारा फैलाये गये अन्धकार को पार करके विष्णुभक्ति के द्वारा अपने वास्तविक रूप (विष्णुपद) को पा लेता है। इसमें अमूर्त तत्त्वों को पात्र बनाया गया है, ये सभी मानव जीवन को प्रभावित करते हैं। मनुष्य की स्वाभाविक वृत्तियाँ दो प्रकार की हैं- सत् तथा असत्। सत् प्रवृत्तियाँ आत्मज्ञान की ओर ले जाती हैं तो असत् प्रवृत्तियाँ भवचक्र में डालती हैं।

इस नाटक के पात्रों में एक ओर मति, विवेक, करुणा, शान्ति, श्रद्धा, उपनिषद्, क्षमा, सरस्वती, विष्णुभक्ति आदि हैं तो दूसरी ओर महामोह, अहंकार, दम्भ, काम, लोभ, मिथ्यादृष्टि, हिंसा, तृष्णा आदि असत् प्रवृत्तियों पात्र बनी हुई हैं। इनके कथन यथार्थ जीवन के सूचक हैं। जैसे महामोह कहता है- अरे, ये मूर्ख कैसे निरंकुश हैं। शरीर से भिन्न आत्मा है, वह दूसरे लोक में जाकर फल भोगेगा- यह आशा वैसी ही है जैसी आकाशवृक्ष से बड़े-बड़े फलों की आशा रखना। इसी प्रकार चार्वाक, दिगम्बर, भिक्षु, कापालिक आदि पात्रों को लाकर नास्तिक मतों के पाखण्ड का उपहास किया गया है। इसके कुछ अंकों के प्रसंगानुसार नाम भी हैं। जैसे अंक ४- विवेकोद्योग; अंक ५- वैराग्यप्रादुर्भाव; अंक ६-जीवन्मुक्ति।

यद्यपि शुद्ध नाट्यकला की दृष्टि से यह नाटक बहुत सफल नहीं है, तथापि इसका उद्देश्य उत्तम है। इसमें नाटक के माध्यम से दार्शनिक विषयों का सरल, सरस और प्रवाहपूर्ण रोचक भाषा में वर्णन किया गया है। कठिन दार्शनिक भावों को छोटे-छोटे पद्यों में सरल रूप में समन्वित किया गया है। इसमें वेदान्त के ब्रह्मवाद और वैष्णव भक्ति का सुन्दर सामंजस्य प्रस्तुत किया गया है।

इसके दार्शनिक पद्य प्रभावशाली और मार्मिक हैं। वसन्ततिलका और शार्दूलविक्रीडित कवि के प्रिय छन्द हैं।

इसके कथानक में मन की वृत्तियों के बीच युद्ध दिखाया गया है जिसके अन्त में विष्णु भक्ति की विजय होती है। मन के दो शक्तिशाली पुत्रों के बीच विरोध की कल्पना है; ये पुत्र सौतेले भाई हैं जो मन की दो स्त्रियों से उत्पन्न हैं। प्रवृत्ति नामक स्त्री से मोह का और निवृत्ति से विवेक का जन्म हुआ है। मोह के परिजन काम, रति, लोभ, हिंसा, अहंकार आदि हैं। मोह का पौत्र दम्भ है जो उसके पुत्र लोभ एवं पुत्रवधू तृष्णा से उत्पन्न है। एक कुलटा के रूप में मिथ्यादृष्टि का निरूपण है। चार्वाक जडवादियों का प्रतिनिधि है।

इस नाटक में दूसरे पक्ष (= उत्तर पक्ष) का प्रधान विवेक है जिसके दल में मति, करुणा, शान्ति, श्रद्धा, क्षमा, सन्तोष और वस्तु-विचार जैसे लोग हैं। कुछ काल के लिए विवेक पराजित होता है, उसकी सेना विच्छिन्न हो जाती है किन्तु अन्ततः उसीकी विजय होती है। इसमें विष्णुभक्ति की बड़ी भूमिका रहती है। इसके मुख्य कथानक में श्रद्धा और शान्ति की कथा जोड़ी गयी है। शान्ति अपनी माँ श्रद्धा को खो चुकी है। श्रद्धा पर दुष्टों का आक्रमण हुआ है किन्तु विष्णुभक्ति उसे बचा लेती है। इस कथानक में बड़े कौशल से जैन, बौद्ध और पाशुपत धर्मों में श्रद्धा का अभाव दिखाया गया है। अनेक संघर्षों के बाद सत्य की विजय होती है। राजा मन को यद्यपि अपनी पत्नी प्रवृत्ति तथा पुत्र मोह के वियोग से दुःख होता है किन्तु सत् सिद्धान्त वेदान्त द्वारा प्रबोधित होने पर उसे धैर्य मिलता है। वह निवृत्ति को ही पत्नी के रूप में स्वीकार कर लेता है। विवेक का विवाह उपनिषद् से होता है जिससे प्रबोधचन्द्रोदय जन्म लेता है। पुरुष अपने को विष्णु के रूप में पहचान लेता है।

नाटक की दृष्टि से यह बहुत सफल नहीं है किन्तु इसका उद्देश्य उत्तम है क्योंकि अद्वैत वेदान्त और विष्णुभक्ति का समन्वय रोचक बनाकर प्रस्तुत किया गया है। दार्शनिक विषय होने पर भी कहीं नीरसता नहीं है, सामान्य नाट्य-नियमों का पालन भी इसमें सर्वत्र किया गया है। सूक्ष्म भावों की अभिव्यक्ति के लिए कोई आध्यात्मिक व्यायाम भी इसमें नहीं है, प्रत्युतर भाषा में तर्कसंगत और बुद्धिगम्य शैली में नाट्य प्रस्तुति है। कृष्णमिश्र की शैली परिनिष्ठित साहित्यिक है। पाखण्डियों के रहस्योद्घाटन में हास्यरस भी पर्याप्त है किन्तु मुख्य रस 'शान्त' है क्योंकि जीवन-यात्रा को वैराग्य की

ओर उन्मुख करने का उद्देश्य रखा गया है, नैतिक जीवन अध्यात्मोन्मुख होकर अन्ततः मुक्ति (विष्णु के रूप में अपने को जानना) प्राप्त कराता है। हास्यरस के रोचक पद्य इसमें पूर्वपक्ष का उपहास करते हैं।

प्रबोधचन्द्रोदय का वैशिष्ट्य तथा नाट्यसाहित्य में उसका स्थान- प्रबोधचन्द्रोदय नाटक की रचना में महाकवि श्रीकृष्णमिश्र का उद्देश्य अद्वैत वेदान्त और विष्णुभक्ति का समन्वयात्मकरूप उपस्थित करना है, जिसका स्वर पात्रों के संवादों मे माध्यम से किसी-न-किसी रूप में आदि से अन्त तक गूँज रहा है जो अन्त में कथावस्तु के विकास का परिणाम बन जाता है। इस दृष्टि से भी श्रीकृष्णमिश्र की यह कृति उच्च कोटि की ठहरती है।

श्री कृष्ण मिश्र ने गम्भीर भावपूर्ण दार्शनिक विचारधारा को, नाट्यशास्त्रीय सिद्धान्तानुकूल आकार प्रकार से युक्त और मान्यनियमों से अलङ्कृत एक नाटक का रूप देने का प्रयास किया है। किसी दार्शनिक सिद्धान्त को नाटकीय रूप देना बड़ा कठिन होता है फिर भी मिश्र जी की यह रचना अन्य दार्शनिक प्रतीकनाटकों की अपेक्षा अधिक सफल हुई है। इन्होंने मानवहृदय को स्वाभाविक वृत्तियों के अन्तविरोध का जो कलात्मक नाटकीय चित्र उपस्थित किया है उससे इनकी यथार्थचित्रण क्षमता का स्पष्ट पता चलता है। इनकी कला का एक उत्कृष्टरूप यह भी है कि इस नाटक में स्त्री-पुरुष मिलाकर लगभग अठ्ठाईस पात्र हैं। उनमें प्रायः सभी अमूर्त भाव रूप हैं जिनका मानवीकरण किया गया है। इतने अधिक पात्रों के होते हुए भी चरित्रों का परिस्थितिगत विकास अधिक स्वाभाविक रूप में हुआ है। नाटक के नायक विवेक के केन्द्रीय महत्त्व का सम्यक् निर्वाह करते हुए, किसी भी पात्र को व्यक्तित्वविकास से वञ्चित नहीं होने दिया। नाटक की कथा और उसकी मूल संवेदना कहीं उलझते नहीं पायी। इस सफलता का सारा श्रेय इनकी सतर्क अद्भुत प्रतिभा को है। कथोपकथन की दृष्टि से भी यह नाटक निर्दोष है। कहीं भी निरर्थक और अनावश्यक वार्तालाप को स्थान नहीं दिया गया है। इसके कथोपकथन कथानक को निरन्तर आगे बढ़ाने तथा पात्रों की स्वभावगत चारित्रिक विशेषताओं को अभिव्यक्त करने में पूर्ण सफल हैं।

इस रूपक का अङ्गी (मुख्य) रस 'शान्त' है। 'शम' स्थायिभाव है। नायक धीर नायिका उपनिषद् है। अनित्यता कि वा दुःखमयता के कारण सांसारिक विषयों को निःसारता के व्यञ्जक वचन आदि

अनुभाव है। तपोवन, नदी, पर्वत, तीर्थस्थान आदि उद्दीनन विभाव हैं। हर्षपुलकादि सात्त्विक भाव हैं। हर्ष, मति, धृति, जीवदया आदि व्यभिचारी भाव है। प्रसाद और माधुर्य गुण है। अन्य रौद्रादि रस अङ्ग रूप में आये हैं ।

मिश्र जी की सफलता में उनकी प्रौढकवित्वशक्ति का बड़ा हाथ है। इनकी कविता में प्रवाह और प्रसाद है। कविता के द्वारा अमूर्त भावों को मूत्तिमान् बनाने, दार्शनिक गूढतत्त्वों को हृदयङ्गम कराने, किसी सिद्धान्त या वस्तु के स्वरूप में मिश्र जी सिद्धहस्त हैं।

महाकवि मिश्रजी ने अनेकत्र पात्रों के मुँह से जो नीति श्लोक कहलवाये हैं वे भी भर्तृहरि के नीति श्लोकों के समान ही हृदयावर्जक हैं। इस प्रकार इस नाटक में नाटकीय विधान के साथ कवित्व का स्तुत्य सहयोग मिलता है।

इस नाटक की भाषा सरल एवं सरस है। शैली प्रसादगुणपूर्ण है। शान्तरस प्राधान्य होने से प्रायः मधुर वर्णों का प्रयोग एवं मधुरपदों की योजना की गयी है। वाक्य छोटे छोटे हैं। लम्बे लम्बे समासों से बचने का प्रयत्न किया गया है।

अभिनेयता को दृष्टि से भी यह सफल है क्योंकि इस नाटक में सूक्ष्म भावों को व्यक्त करने के लिए उनका सफल व्यक्तीकरण किया गया है जिससे अभिनेयता में कोई बाधा या कठिनाई नहीं होती।

प्रतीक नाटकों में श्रीकृष्ण मिश्र का यह नाटक सर्वप्रथम रचना है फिर भी वस्तु विषय, वर्णन शैली, प्रतिपाद्य और कला आदि की दृष्टि से प्रतीक नाटकों में सबसे अधिक सफलता प्राप्त करने के कारण इसका सर्वप्रथम स्थान है।

अन्य कोटि के सामान्य नाटकों से इसकी तुलना करना न्याय नहीं होगा, क्योंकि कथोपकथन का वह आनन्द या रसपरिपाक जो स्वभावतः सामान्य नाटकों में प्राप्त होता है, दार्शनिक नाटकों में कदापि सम्भव नहीं है। दार्शनिक नाटकों का आनन्द, दार्शनिक भावना से ही सजीव अभिनय देखने पर प्राप्त किया जा सकता है अथवा दार्शनिक भावना से ही पढ़ने पर पाठक किसी सीमा तक अपनी कल्पना के सहारे दृश्यों के मानसिक चित्र में रमता हुआ ऐसे नाटकों का रसास्वादन कर सकता है।